International Journal of Sanskrit Research 2019; 5(2): 91-98

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2019; 5(2): 91-98
© 2019 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 19-01-2019
Accepted: 20-02-2019

डॉ. नेहा खरे
शोधार्थिनी, (डॉ. एस. राधाकृष्णन पोस्ट डॉक्टोरेल फेलोशिप्), संस्कृत तथा प्राकृत भाषा, विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence
डॉ. नेहा खरे
शोधार्थिनी, (डॉ. एस. राधाकृष्णन पोस्ट डॉक्टोरेल फेलोशिप्), संस्कृत तथा प्राकृत भाषा, विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

प्रणव–आध्यात्मिक तथा मानसिक शक्ति

डॉ. नेहा खरे

प्रस्तावना

अमरकोष के अनुसार ओंकारप्रणवौ समौ अर्थात् ओङ्कारः, प्रणवः (2पु.) ये 'ऊँ कार' के दो नाम है। ओंकारेति। आवति। 'अवतेष्टिलोपश्च' (उ. 1/142) इति मन्प्रत्ययस्यैवटिलोपः। 'ज्वरत्वरः' (6/4/20) इत्यठौ। गुणः (7/3/84)। 'वषट्कारः' (1/2/34) इति लिङ्गातसमुदायादपि कारप्रत्ययः (वा. 3/3/108)।।(1)।।'।। प्रणूयते स्तूयते। 'णु स्तुतौ' (अ.प.अ.)। 'ऋदोरप्' (3/3/51)। 'उपसर्गात्' (8/4/14) इति णत्वम्।।2।।'।। द्वे 'ऊँ कारस्य'।1 वामन शिवराम आप्टे जी के अनुसार 'प्रणव' पवित्र अक्षर 'ओम्' ही है।[2] उपनिषदों (छान्दोग्योपनिषद् और माण्डूक्योपनिषद्) में भी 'प्रणव' जो कि ईश्वर का वाचक है वह यह 'ओम्' ही है।

उपनिषदों के अनुसार प्रणव का स्वरूप

ओङ्कार (प्रणव) का वैदिक–साहित्य में इतना अधिक महत्त्व है कि उपनिषदों में तो ओङ्कार (प्रणव) की उपासना अर्थात् उदगीथोपासना को ही जीवन का परम–लक्ष्य माना गया है।3 अब सर्वप्रथम कठोपनिषद् में यम नचिकेता को कहते हैं–

> सर्वेवेदाः यत् पदम् आमनन्ति, तपाँसि सर्वाणि च यत् वदन्ति। यत् इच्छन्तः ब्रह्मचर्य चरन्ति तत् ते पदं सङ्ग्रहेण ब्रवीमि। ओम् इति एतत्।।[4]

अर्थात् जिस पद का सब वेद बार–बार वर्णन करते हैं, सभी तपों से जो कुछ कहा जा सकता है, जिसकी इच्छा से ब्रह्मचर्य–व्रत को धारण किया जाता है, संक्षेप में उसे एक शब्द में परिभाषित किया जाये तो वह 'ओङ्कार' है।

> एतद्धयेवाक्षरं ब्रह्म एतद्धयेवाक्षरं परम्। एतद्धयेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।।[5]

अर्थात् यह 'ओउम्' एक अक्षर है, परन्तु यही (ओउम्) ब्रह्म है, यही (ओउम्) सबसे परे है, इसी (ओउम्) अक्षर को जानकर जो कोई कुछ इच्छा करता है, उसे वह प्राप्त हो जाता है।
इसके पश्चात् प्रश्नोपनिषद् में शैव्य सत्यकाम ने पिप्पलाद आचार्य से प्रश्न पूछा कि हे आचार्य–

> सः यः हि वा एतद् भगवन् मनुष्येषु प्रायणान्तं ओङ्कारं अभिध्यायीत कतमं वाव सः तेन लोकं जयति इति।।[6]

अर्थात् हे भगवन्! जो व्यक्ति जीवन भर ओङ्कार का ध्यान करे, वह ऐसे (ओङ्कार) ध्यान से किस लोक को जीत लेता है? इसका उत्तर देते हुए पिप्पलाद ऋषि ने कहा–

> तस्मै सः ह उवाच, एतत् वै सत्यकाम! परं चापरं च ब्रह्म यद् ओङ्कारः, तस्मात् विद्वान् एतेन एव आयतेन एकतरम् अनु एति।।[7]

अर्थात् हे सत्यकाम! ब्रह्म के दो रूप हैं–एक पर और दूसरा अपर। ओङ्कार में पर–ब्रह्म और अपर–ब्रह्म इन दोनों का समन्वय है। इस संसार से जो परे है वह पर–ब्रह्म है और जो संसार में ही है वह अपर–ब्रह्म। अर्थात् संसार से जो परे है, संसार को भी लांघ गया है, जहाँ संसार नहीं है वहाँ भी जो उपस्थित है वह पर–ब्रह्म और संसार के कण–कण में जो विद्यमान है वह अपर–ब्रह्म है। ब्रह्म के इन दोनों रूपों को समझ लेना 'ओङ्कारोपासना' है।

अब मुण्डकोपनिषद् में शौनक नाम के एक धनिक का वर्णन प्राप्त होता है जो अङ्गिराऋषि के पास यह जानने के लिए पहुँचा कि किसके जानने से यह सब कुछ जाना जा सकता है तब अङ्गिराऋषि ने उन्हें 'परा' तथाा 'अपरा' विद्या का उपदेश देते हुए प्रसङ्ग के कारण कहा–'प्रणव' अर्थात् ओङ्कार धनुष है–

> प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
> अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।।[8]

अर्थात् प्रणव (ओङ्कार) धनुष है, आत्मा शर (बाण) है, ब्रह्म लक्ष्य है, अप्रमत्त (प्रमादरहित) होकर इस लक्ष्य का बेध करे, फिर जैसे शर (बाण) लक्ष्यमय हो जाता है, वैसे आत्मा ब्रह्ममय हो जाती है।
(ओङ्कार) प्रणव के विषय में माण्डूक्योपनिषद् में बहुत गहराई से विवेचन किया गया है उतना अन्य किसी उपनिषद् में नहीं अर्थात् माण्डूक्योपनिषद् में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक ओङ्कार की ही व्याख्या को प्रस्तुत किया गया है जो इस प्रकार है–

> ओमित्येतदक्षरमिद ँ्सर्व तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोंकार एव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव।[9]

अर्थात् ओम (प्रणव) यह एक छोटा–सा अक्षर है, परन्तु सम्पूर्ण संसार (निखिल) उसी ओम् अक्षर की व्याख्या है, भूत (जो था), वर्तमान (जो है) भविष्यत् (जो होगा), सब ओङ्कार की ही व्याख्या है अर्थात् ओङ्कार का विस्तार है। जो भूत, वर्तमान और भविष्यत्– इन तीनों कालों में नहीं समाता है, जो त्रिकालातीत है, वह भी ओङ्कार की ही व्याख्या है।
माण्डूक्योपनिषद् में ओङ्कार की अ, उ, म्– इन तीन मात्राओं एवं अमात्र का–जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीयावस्था के साथ दर्शाते हुए चेतना के स्वरूप को प्रतिपादित किया गया है।
अब आगे 'तैत्तिरीयोपनिषद्' में भी ओङ्कार की व्याख्या को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है–

> ओमिति ब्रह्म। ओमितीद ँ्सर्वम्। ओमित्येतदनुकृति ह स्म वा अप्यो ँ्श्रावयेत्याश्रावयन्ति। ओमिति सामानि गायन्ति। ओ ँ्शोमिति शस्त्राणि श ँ्सन्ति। ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति। ओमिति ब्रह्मा प्रसौति। ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति। ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नवानीति। ब्रह्मैवोपाप्नोति।।[10]

अर्थात् 'ओम्' ही ब्रह्म है, 'ओम्' ही यह सब कुछ है, संसार 'ओम्' की ही अनुकृति (अनुकरण) है, गुरु शिष्य को पाठ सुनाने के लिए जब कहता है, तब शिष्य 'ओम्' का उच्चारण करके ही पाठ सुनाता है, 'ओम्' कहकर साम का गान करता है। शास्त्र–पाठ 'ओम्' से प्रारम्भ होता है और समाप्ति–शमोम्–'ओम्' से होती है। अध्वर्यु 'ओम्' कहकर ही यजुर्वेद का पाठ करता है, ब्रह्मा 'ओम्' से परमात्मा की स्तुति करता है और 'ओम्' कहकर ही अग्निहोत्र आरम्भ करने की अनुज्ञा देता है। ब्राह्मण प्रवचन करते समय 'ओम्' का प्रयोग करता है और कहता है कि मैं ब्रह्म को प्राप्त करूँ, और इस प्रकार वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

> ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।
> यस्तत्र वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते।।[11]

अर्थात् जिस प्रणव में समस्त देवगण भलीभाँति स्थित हैं, उस परम व्योम प्रणव अक्षर में सम्पूर्ण वेद स्थित हैं, जो मनुष्य उस ओङ्कार को नहीं जानता है, वह वेदों के द्वारा क्या सिद्ध करेगा? परन्तु जो उस प्रणव को जानते हैं वे तो सम्यक् प्रकार से स्थित रहते हैं।

इस श्रुति पर निरुक्तकार यास्क ने स्पष्ट लिखा है कि–

> इति विदुष उपदिशति–कतमत्तदेतक्षरमोमित्येषा वागिति शाकपूणि–''ऋचश्च ह्यक्षरे परमे व्यवने धीयन्ते नानादेवतेषु च मत्रेष्वेतद्धवा एतदक्षरं यत्सर्वां त्रयीं विद्या प्रतिपती''ति च ब्राह्मणम्।।[12]

अर्थात् जिस परम व्योम सञ्ज्ञक अक्षर में देवादि स्थित हैं वह अक्षर कौन है? ओम् यह वाक् परम उत्कृष्ट सब की रक्षा करने वाला जो प्रणव है, उसमें ही सम्पूर्ण ऋग्वेदादि मंत्र अध्ययन किये जाते हैं और जो अनेक देवता है वे सब मन्त्रों में स्थित हैं तथा मन्त्रों में कारण होने से यह अक्षर व्याप्त है ऐसा ब्राह्मण भी प्रतिपादित करते हैं। यह शाकपूणि नामक निरुक्तकार ने कहा है।
ओं खं ब्रह्म।।[13] अर्थात् ओं (प्रणव) खं ब्रह्म पद वाच्य नारायण हैं।
ओं क्रतो स्मर।।[14] अर्थात् हे सच्चिदानन्द धन पर ब्रह्म नारायण है, ज्योतिष्टोमादि– क्रतुस्वरूप भगवन् मुझ अकिञ्चन भक्त को आप (ओं से) स्मरण करें।

> एतदालम्बनं श्रेष्टमेतदालम्बनं परम्।
> एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते।।[15]

अर्थात् यह ओङ्काररूप आलम्बन ब्रह्मोपासना के लिए सबसे श्रेष्ठ है, यह प्रणवरूप आलम्बन सर्वोत्कृष्ट है, इस ओम् आलम्बन को आचार्य से भलीभाँति जानकर परब्रह्म के लोक में उपासक पूजित होता है अर्थात् पूजा जाता है।

> ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं सामभिर्यत्कवयोवदन्ति।
> तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति।।[16]

अर्थात् ह्रस्व प्रणव की उपासना से उपासक ऋग्वेद के मन्त्रों का उच्चारण करके इस मनुष्य लोक को प्राप्त होता है तथा दीर्घ प्रणव की उपासना से उपासक यजुर्वेद के मन्त्रों को करके अन्तरिक्ष में स्थित चन्द्रलोक को प्राप्त करता है और क्रान्तदर्शी प्लुत प्रणव की उपासना से सामवेद के मन्त्रों को करके जिस परब्रह्म लोक की प्राप्ति को कहते हैं विवेकशील उपासक ओङ्काररूप निश्चय करके मार्ग के अवलम्बन से उस परब्रह्म नारायण परम शान्त जरारहित, मरणरहित, भयरहित और सर्वश्रेष्ठ परमात्मा हैं।

> ओमित्येवंध्यायथात्मानं स्वस्ति वः।।[17]

अर्थात् 'ओम्' इस नाम के द्वारा परब्रह्म नारायण का ध्यान करो, इस प्रकार के ध्यान में प्रवृत्त तुम लोगों के लिए कल्याण हो।

> ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीतोमिति ह्यदगायति।।[18]

अर्थात्, ओम् इससे अविनाशी उदगीथ परब्रह्म नारायण की उपासना करें और निश्चय करके 'ओम्' ऐसा गान करें।

> तद्वोभयं वै प्रणवेददेहे।।[19]

अर्थात्, निश्चय करके देह में प्रणव द्वारा ब्रह्म और जीव इन दोनों को जानता है।

> आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवंचोत्तरारणिम्।
> ज्ञाननिर्मथनाभ्यासात्पाशं दहति पण्डितः।।[20]

अर्थात्, पण्डित जन अपनी आत्मा को अरणि और प्रणव को उत्तरारणि करके ज्ञानरूप मन्थन के अभ्यास से माया के फांस को जलाता है।

ओं हि ओं हि ओं हीत्येतदुपनिषदं विन्यसेत्।।[21]

अर्थात्, निश्चय करके परब्रह्म नारायण के निकटता प्राप्त कराने वाले 'ओम्' को विन्यास करे।

अथ कस्मादुच्यत ओङ्कारो यस्मादुच्चार्यमाण एव प्राणानूर्ध्वमुत्क्रामति तस्मादुच्यते– ओङ्कारः। अथ कस्मादुच्यते प्रणवः यस्मादुच्चार्यमाण एवऋग्यजुः सामाथर्वाङ्गिरसं ब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रणामयति नामयति च तस्मादुच्यते प्रणवः।।[22]

अर्थात्, ओङ्कार क्यों कहा जाता है जिसके उच्चारण करने से प्राणादिक ऊपर को जाते हैं इससे ओङ्कार कहा जाता है। और प्रणव क्यों कहा जाता है जिसके उच्चारण करने से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ब्रह्मवेत्ताओं के लिए प्रणाम करता है और नम्र कराता है, इससे प्रणव कहा जाता है।

ओमित्येतदक्षरमादौ प्रयुक्तम्, प्राणान्सर्वान्परमात्मनि प्रणानयतीत्येतस्मात्प्रणवः।।[23]

अर्थात्, ओम् यह अक्षर सृष्टि के आदि में प्रयुक्त हुआ। सब प्राणों को परमात्मा में लगाता है इससे प्रणव कहा जाता है।

तस्मादोमित्यनेनैतदुपासीताजस्रमिति।।[24]

अर्थात्, इससे ओङ्कार द्वारा सर्वदा परब्रह्म नारायण की उपासना करें।

ओङ्कारयो न जानाति ब्रह्मणो न भवेत्तु सः।।[25]

अर्थात्, जो ओङ्कार को नहीं जानता है वह परब्रह्म को भी नहीं जान सकता।

ओङ्कारप्रभवा देवा ओङ्कारप्रभवा स्वराः।
ओङ्कारप्रभवं सर्व त्रैलोक्यं स चराचरम्।।[26]

अर्थात्, ओङ्कार से सभी देव उद्भूत (उत्पन्न) होते हैं तथा ओङ्कार से ही सब स्वर उत्पन्न होते हैं और ओङ्कार से चर, अचर के साथ तीनों लोक उत्पन्न होते हैं।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म युदक्तं ब्रह्मवादिभिः।[27]

अर्थात्, जो ब्रह्मवादियों से कहा गया है वह ओम् यह व्यापक प्रधान अक्षर है।

ततो रहस्युपाविष्टः प्रणवं प्लु तमात्रया।
जपेत्पूर्वर्जितानांतु पापानां नाशहेतवे।।[28]

अर्थात्, इसके अन्तर्गत बताया गया है कि इसके बाद एकान्त में बैठकर पूर्वजन्मर्जित पापों के नाश के लिए लुप्तमात्रा करके ओङ्कार को जपना चाहिए।

सर्वविघ्नहरो मन्त्रः प्रणवः सर्वदोषहा।[29]

अर्थात्, सभी विघ्नों का और सभी दोषों का नाश करने वाला प्रणव है।

ओं प्रत्यानन्दं ब्रह्मपुरुषं प्रणवस्वरूपम्।।[30]

अर्थात्, ओं प्रत्येक आनन्द है और ब्रह्मपुरुष ओङ्कार का ही स्वरूप है।

भूतं भवदभविविष्यद्यत्रिकालोदितमव्ययम्।
तदप्योङ्कारमेवायं विद्धि मोक्षप्रदायकम्।।[31]

अर्थात्, भूत, भविष्य और वर्तमान यह जो कुछ त्रिकालोदित विकार रहित वस्तु है वह भी ओङ्कार ही है इस ओङ्कार को मोक्ष देने वाला अर्थात् मोक्ष प्रदान करने वाला जानना चाहिए।

ओमित्यात्मानं युञ्जीत।।[32]

अर्थात्, ओङ्कार (प्रणव) के माध्यम से आत्मा को समर्पण करें।

प्रणवोत्प्रभवो ब्रह्मा प्रणवात्प्रभवो हरिः।
प्रणवात्प्रभवो रूद्रः प्रणवो हि परो भवेत्।।[33]

अर्थात्, प्रणव (ओङ्कार) से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं, प्रणव से इन्द्र उत्पन्न होते हैं प्रणव से रुद्र उत्पन्न होते हैं। निश्चय करके प्रणव सबसे श्रेष्ठ है।

शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि यो जपेत्प्रणव सदा।
न स लिप्यति पापेन पदमपत्रमिवाम्भसा।।[34]

अर्थात्, जो पवित्र या अपवित्र सब समय में ओङ्कार (प्रणव) को जपता है वह जैसे जल से कमल पत्र नहीं लिप्त होता है वैसे ही पाप से लिप्त नहीं होता है।

प्रणवात्मकत्वेनोक्तं ब्रह्म।।[35]

अर्थात्, प्रणवात्मक से कहा हुआ परब्रह्म है।

त्रयः कालास्त्रयोदेवास्त्रयोलोकास्त्रयः स्वराः।
त्रयो वेदाः स्थिता यत्रतत्परं ज्योतिरोमिति।।[36]

अर्थात्, तीन काल, तीन देवता, तीन लोक, तीन स्वर, तीन वेद जहाँ स्थित हैं, वह ज्योति 'ओम्' यह है।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म।।[37]

अर्थात्, ओं यह एकाक्षर ब्रह्म है।

ओङ्कारमात्रमखिलं विश्वप्राज्ञादि लक्षणम्।।[38]

अर्थात्, विश्व प्राज्ञ आदि लक्षण सम्पूर्ण ओङ्कार मात्र है।

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्। तस्योपख्याख्यानं भूतं भवदभविष्यद्यच्चान्यत्तत्त्वमंत्रवर्णदेवता छन्दो ऋक्कलाशक्तिसृष्टयात्मकमिति।।[39]

अर्थात्, ओं यह अक्षर यह सब संसार है उसी का उपरख्याख्यान भूत, भविष्य, वर्तमान है और अन्य जो तत्त्व मन्त्र वर्ण देवता छन्द, ऋचा, कला, शक्ति सृष्टयात्मक है वो ओङ्कार ही है।

अक्षरोऽहमोङ्कारोऽयम्।।[40]

अर्थात्, यह ओङ्कार अक्षर मैं हूँ।

ओमित्यात्मानमव्यग्रो ब्रह्मव्यग्नौ जुहोति यत्।
ज्ञानयज्ञः स विज्ञेयः सर्वयज्ञोत्तमोत्तमः।।[41]

अर्थात्, जो सावधान होकर प्रणवमन्त्र द्वारा अपनी आत्मा को ब्रह्माग्नि में हवन करता है तो सब यज्ञों से उत्तमोत्तम वह ज्ञानयज्ञ है ऐसा जानना चाहिए।

प्रणवः सर्ववेदेषु।।[42]

अर्थात्, सभी वेदों में मैं प्रणव (ओङ्कार) हूँ।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्।।[43]

अर्थात्, 'ओम्' इस एकाक्षररूप दिव्य मेरे नाम को उच्चारण करता हुआ और मुझे स्मरण करता हुआ जो शरीर छोड़कर जाता है वह परमगति को प्राप्त होता है।

वेद्यं पवित्रमोङ्कारः।।[44]

अर्थात्, जानने योग्य पवित्र ओङ्कार मैं हूँ।

ओं तत् सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधि स्मृतः।
ब्राह्मणा स्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुराः।।[45]

अर्थात्, ओं, तत्, सत् ऐसा तीन प्रकार का वेद का निर्देश बताया गया है उसी से पहले ब्राह्मण, वेद और यज्ञ रचे गये हैं।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मपादिनाम्।।[46]

अर्थात्, इसलिए वेदपाठियों की शास्त्रोक्त यज्ञ, दान और तप की क्रियाएँ सदा 'ओम्' ऐसा उच्चारण करके हुआ करती है।

ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा।
स्रवत्यनोङ्कृतं पूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति।।[47]

अर्थात्, सर्वदा वेदाध्ययन के प्रारम्भ में और वेदाध्ययन की समाप्ति में प्रणव (ओङ्कार) को उच्चारण करें, क्योंकि जिस वेदाध्ययन के प्रारम्भ प्रणवोच्चारण नहीं किया जाता है वह शनैः शनैः नष्ट हो जाता है और जिस वेदाध्ययन की समाप्ति में प्रणवोच्चारण नहीं किया जाता है वह अवस्थिति को ही नहीं प्राप्त करता है।

तस्य वाचकः प्रणवः।।[48]

अर्थात्, उस परमात्मा का वाचक प्रणव है।

तज्जपस्तदर्थभावनम्।।[49]

अर्थात्, प्रणव का जप करना चाहिए और प्रणव का अर्थानुसन्धान करना चाहिए।

प्रणवाद्यास्तथा वेदाः प्रणवे पर्यवस्थिताः।
वाङ्मयं प्रणवं सर्वं तस्मात्प्रणवमभ्यसेत्।।
ओङ्कारप्रभवावेदा ओङ्कारप्रभवाः स्वराः।
ओङ्कारप्रभूवं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।।
आदयं तु त्र्यक्षरं ब्रह्म त्रयी यत्र प्रतिष्ठिता।
स गुह्योऽन्यस्त्रिवृद्ध्वेदी यस्तं वेद स वेदवित्।।[50]

इसके अन्तर्गत प्रणव (ओङ्कार) के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है कि– सब वेद प्रणव से ही उत्पन्न हुए हैं और प्रणव में ही स्थित हैं, सारा वाङ्मय प्रणव है इसलिए प्रणव (ओङ्कार) का अभ्यास करें। सब वेद ओङ्कार (प्रणव) से उत्पन्न हुए हैं और सब स्वर ओङ्कार से ही उत्पन्न हुए हैं और ये स्वर स्थावर जङ्गमात्मक सारा संसार ओङ्कार से ही उत्पन्न हुआ है। तीन अक्षर वाला प्रणव आदि में उद्भूत हुआ है अथवा आदिकारण है प्रणव में वेद प्रतिष्ठित रहता है तीन वाला प्रणव (ओङ्कार) अन्यान्य वेदों से अन्यन्त विलक्षण तथा गोप्य है उस प्रणव को सार्थक जो जानते हैं वे ही वेदार्थ तत्त्वज्ञ हैं। इस प्रकार संक्षेप में प्रणव के वैभव को प्रतिपादित किया गया है। अब समस्त प्रणव से भगवदुपासना को प्रतिपादित किया जाता है। यह ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त भोक्तृ भोग्यरूप सब जगत् प्रेरिता परब्रह्म नारायण से ओत–प्रोत है इस कारण से 'ओम्' पदवाच्य परब्रह्म परमात्मा विनाश रहित सत्य है। उस परब्रह्म नारायण के महत्त्व को निकटतम विशेष रूप से लक्ष्य करने वाला ही जड़ चेतन समुदाय रूप सम्पूर्ण जगत् है। परब्रह्म नारायण के भूतकाल में था और वर्तमान काल में है तथा होनहार भविष्यकाल में भी सर्वदा एक प्रकार से रहने वाला है इस कारण से विनाश रहित सत्य है और भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीनों कालों से परे दूसरा जो कालत्रय कृत विकारहीन रूप है और जो कुछ सब संसार है, वह सब निश्चय करके ब्रह्मात्मक है।

सर्वं ह्येतद्ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पाद।।[51]

अर्थात्, निश्चय करके यह ओङ्कार पद वाच्य अक्षर नाम वाला (ब्रह्म) परब्रह्म नारायण सर्वत्र परिपूर्ण सर्वस्वरूप है, यह सब के भीतर अन्तर्यामीरूप से स्थित (आत्मा) व्यापक आत्मा (ब्रह्म) पहले कहा हुआ ओङ्कारपद वाच्य परब्रह्म नारायण है, वह समस्त प्रणव (ओङ्कार) पदवाच्य अक्षर नाम वाला ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त सबसे भीतर अन्तर्यामीरूप से स्थित यह व्यापक परमात्मा चार स्वरूपभूत अंश वाला है अर्थात् निश्चय करके यह ओङ्कार पदवाच्य अक्षर नाम वाला परब्रह्म नारायण सर्वत्र परिपूर्ण सर्वस्वरूप है।

सोऽयमात्माध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा।
मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति।।[52]

अर्थात्, अक्षरों और मात्राओं में उस आत्म–तत्त्व का वर्णन किया जाये तो उसे 'ओङ्कार' कहते हैं अर्थात् 'ओम्' इस शब्द से कहा हुआ चतुष्पाद यह आत्मा सबसे अधिक और अविनाशी है और यह अक्षर अधिक मात्रा अर्थात् अंश जिसका है वह अधिमात्र है, वैश्वानर तैजस प्राज्ञ आदिक पाद ही मात्रा है और अकार, उकार और मकार ये तीनों मात्राएँ पाद हैं अर्थात् ओम् इस शब्द से कहा हुआ वह वैश्वानर 1, तैजस 2, प्राज्ञ 3 और तृरीय 4 इन चार पाद वाला यह परब्रह्म नारायण सबसे अधिक और अविनाशी होने से अध्यक्षर है और यह अक्षर अधिक मात्रा अर्थात् अंश जिसका है वह अधिमात्र है। 'अ', 'उ', 'म' ये तीनों मात्राएँ क्रम से वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञ पाद हैं। यह उपलक्षण है इससे प्रणव का नाद से 'तुरीय' पाद कहा जाता है।

अथ कस्मादुच्यत ओङ्कारो यस्मादुच्चार्यमाण एव।
प्राणानूर्ध्वमुत्क्रामयति तस्मादुच्यते ओङ्कारः।।[53]

अर्थात्, ओङ्कार (प्रणव) क्यों कहा जाता है? जिसके उच्चारण करने से प्राणादिक ऊपर ही जाते हैं इससे ओङ्कार कहा जाता है।

आदगुणः।[54]

इस सूत्र से गुण होकर (प्रणव ''अ, उ, म'' इन तीन अक्षरों से मिलकर) बना है।

अकार उकारो मकार इति अक्षरं प्रणवम्।[55]

अर्थात्, 'अ', 'उ' और 'म' ये तीन अक्षर प्रणव है।

अकार उकारो मकारश्चेति त्रयो वर्णाः।[56]

अर्थात्, प्रणव में 'अ', 'उ' और 'म' ये तीन वर्ण हैं।

अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।
वेदत्रयान्निरदुहत्।[57]

अर्थात्, प्रजापति ने ऋग्वेद से अर्थात् 'अ' को, यजुर्वेद से 'उ' को और सामवेद से 'म' को निकाला।

अकारश्चाप्युकाश्च मकारश्च ततः परम्।
वेदत्रयात्मक प्रोक्तं प्रणवं ब्राह्मणः पदम्।।[58]

अर्थात्, सर्वप्रथम 'अ' उसके बाद 'उ' और उसके बाद 'म' ये प्रणव में जो तीन अक्षर हैं वो ऋग्यजुःसाम के स्वरूप हैं तथा प्रणव ब्रह्म का पद है।

एकाक्षरं प्रणवं तस्य त्रीणि पदानि सन्ति अकार उकार मकार इति।[59]

अर्थात्, एकाक्षर प्रणव है उस प्रणव के 'अ', 'उ', 'म' ये तीन पद हैं।

अत्र अ इति उ इति म् इति त्रीणि श्री अक्षराणि।[60]

अर्थात्, प्रणव में 'अ', 'उ', 'म' ये तीन सुन्दर अक्षर हैं।

त्रिभ्यो वेदेभ्यः त्रीव्यक्षराणि चोद्धृतानि।।[61]

अर्थात्, ऋग्यजुः साम इन तीन वेदों से 'अ', 'उ', 'म' ये तीन अक्षर निकले हैं।

भूरिति ऋग्वेदादजायत भुवरिति यजुर्वेदात् सुवरिति सामवेदात् तानि शुक्राव्यभ्यतपत् तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वर्णा अजायन्त अकार उकारो मकार इति तानेकधा समभरत् तदेतदोमिति।[62]

अर्थात् 'भूः' ऐसी व्याहृति ऋग्वेद से प्रगट हुई, 'भूवः' ऐसी व्याहृति यजुर्वेद से प्रगट हुई, 'सुवः' ऐसी व्याहृति सामवेद से प्रगट हुई। निर्मल प्रकाशमान इन तीनों व्याहृतियों को परब्रह्म नारायण ने सत्य सङ्कल्प से भलीभाँति तपाया तब इन व्याहृतियों से 'अ', 'उ', 'म' ये तीन अक्षर प्रगट हुए, इन तीन अक्षरों को इकट्ठा किया तब यह ओङ्कार प्रगट हुआ। इस प्रकार से यहाँ पर प्रणव के 'अ', 'उ', 'म' ये तीन मात्राएँ प्रतिपादित हुई हैं।

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राऽऽप्तेरादिमत्त्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं भेद।।[63]

अर्थात्, 'अकार' ओङ्कार की प्रथम मात्रा है। यह 'जीवात्मा' तथा 'ब्रह्म' के जाग्रत स्थान की, जिसका प्रतिनिधि 'वैश्वानर'–शरीर कहा गया है। जो जाग्रत–स्थान वाले जीवात्मा को तथा ब्रह्म को जानता है, उसकी उपासना करता है, वह सब कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। 'आप्नोति' का 'अ' ओङ्कार का 'अकार' है। वह सब स्थानों में 'आदि'–स्थान, मुख्य–स्थान प्राप्त करता है। 'आदि' का 'अ' ओङ्कार का 'अकार' है। 'ओङ्कार' की 'अकार'–मात्रा का ध्यान जागरित (जाग्रत)–स्थान के जीवात्मा और ब्रह्म का ध्यान है। अर्थात् प्रणव की पहली मात्रा अकार वाच्य वैश्वानर की उपासना का फल बतलाया गया है–परब्रह्म नारायण के नामात्मक प्रणव की जो पहली मात्रा 'अ' है वहीं जहाँ पर स्थित होकर जागता है वह नेत्र स्थान है जिसका वह जागरित स्थान वाला वैश्वानर नामक पहला पाद है। (यहाँ पर यह प्रश्न है कि किस कारण से अकारवाच्य वैश्वानर है?) तत्तत् जीव योग्य भोग्य विषयों को भोग के लिए प्राप्त कराने के कारण या जब जगत् के नामों से व्याप्त होने के कारण और आदिवाला होने के कारण अकारवाच्य वैश्वानर है क्योंकि अकार के विषय में ये भी लिखा गया है–

अकारो वै सर्वावाक्।[64]

अर्थात्, अकार निश्चय ही सम्पूर्ण वाणी (वाक्) है।

अक्षराणामकारोऽस्मि।[65]

अर्थात्, अक्षरों में अकार मैं विष्णु हूँ।

अकारेणोटच्यते विष्णुः कल्याणगुणसागरः।[66]

अर्थात्, अकार से कल्याण गुण सागर विष्णु कहे जाते हैं।

अ इति ब्रह्म।[67]

अर्थात्, अ का अर्थ व्यापक परब्रह्म है।

अ इति भगवतो नारायणस्य प्रथमाभिधानम्।[68]

अर्थात्, 'अ' यह नारायण भगवान् का पहला नाम है।

अकारो विष्णुवाचकः।[69]

अर्थात्, 'अ' व्यापक विष्णु का वाचक है।

समस्तशब्दमूलत्वादकारस्य स्वभावतः। समस्तवाच्यमूलत्वाद ब्रह्मणोऽपि स्वभावतः। वाच्य वाचक सम्बन्धस्तयोरर्थात् प्रतीयते।[70]

अर्थात्, अकार स्वभाव से भी सभी शब्दों का मत है और परब्रह्म नारायण स्वभाव से वाच्य पदार्थों का मूल है अतः ये दोनों मूल होने के कारण विदित होता है कि इन दोनों को आपस में वाच्य–वाचक सम्बन्ध है। इन पूर्वोक्त प्रमाणों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि अकार सब नामों में व्याप्त है और आदिवाला सभी का मूल कारण है।

जागरितस्थानश्चतुरात्मा विश्वो वैश्वानरश्चतूरूपोङ्कार एव चतूरूपो ह्ययमकार–स्थूलसूक्ष्मबीजसाक्षिभिरकाररूपैराप्तेरादिमत्त्वाद्वा स्थूलत्वात्सूक्ष्मत्वाद्बीजत्वात्साक्षि– त्वाच्चप्नोति ह वा इदं सर्वमादिश्च भवति य एवं वेद।[71]

अर्थात्, जागरित (जाग्रत)–स्थान वाले के द्वारा उपलक्षित जो सम्पूर्ण जगत् है जिसका स्थूल, सूक्ष्म कारण और साक्षी ये चार स्वरूप हैं वे विश्वरूप वैश्वानर पूर्णतम परमात्मा के प्रथम पाद हैं। वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा इन चार रूपों वाला 'अकार' ओङ्कार की पहली मात्रा है। यह अकार ही वैश्वानर है क्योंकि यह अकार भी स्थूल– वैखरी, सूक्ष्म–मध्यमा, बीज–पश्यन्ति और साक्षी परा इन चार स्वरूपों से परिलक्षित होने के कारण वैश्वानर की भाँति चार रूप वाला ही है। इसके अतिरिक्त आप्ति रूप गुण के होने से भी दोनों में समानता है। वैश्वानर जाग्रत कालीन समस्त जगत् में व्यापक है तथा अकार भी वाणी मात्र में व्यापक है। यही नहीं बोलते समय भी सबसे पहले अकार का ही उच्चारण होता है। हृदय देश में ऊपर को उठी हुई वायु कण्ठ में पहले ध्वनित होती है अतः प्रथम कण्ठ–स्थानीय अकार की ही ध्वनि निकलती है। उधर सृष्टि काल में सर्वप्रथम विराट् स्वरूप वैश्वानर की ही उपलब्धि होती है, अतः प्राप्ति रूप गुण की दृष्टि से भी दोनों में समानता है। इसी प्रकार आदिमान् होने के कारण भी दोनों में समानता है अकार सम्पूर्ण वर्णों में आदि–प्रथम है और वैश्वानर भी चतुष्पाद आत्मा में सबसे पहले प्राप्त होता है। इन सब समानताओं के कारण तथा पूर्वोक्त अनुसार स्थूलरूप, सूक्ष्मरूप, कारणरूप और साक्षीरूप होने से भी दोनों में समानता है। जो इस प्रकार जानता है वह अवश्य ही जगत् के सम्पूर्ण भोगों को प्राप्त कर लेता है और सबका आदि बन जाता है। इन श्रुतियों के प्रमाणों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वैश्वानर सब जगत् में व्याप्त है और आदिवाला भी है। अब अकार–वाच्य वैश्वानर के जानने वाले के लिए फल बतलाया जाता है–जो अधिकारी पुरुष इस प्रकार अकार वाच्य वैश्वानर को भलीभाँति जानता है वह निश्चय करके प्रसिद्ध अपने योग्य समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है और सबका प्रधान कारण हो जाता है अथवा महापुरुषों में आदि प्रथम हो जाता है।

> स्वप्नस्थानतैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्तति समानश्च भवति नास्याब्रह्मवित्कुलै भवति य एवं वेद।।[72]

अर्थात्, 'उकार' ओङ्कार की द्वितीय मात्रा है। यह 'जीवात्मा' तथा 'ब्रह्म' के स्वप्न–स्थान की, जिसका प्रतिनिधि 'तैजस'–शरीर कहा गया है। जो स्वप्न स्थान वाले जीवात्मा तथा ब्रह्म को जानता है, उसकी उपासना करता है, उसका 'उत्कर्ष' होता है, वह अपने कुल में तथा समाज में ज्ञान का विस्तार करता है। 'उत्कर्ष' का 'उ' ओङ्कार का 'उकार' है। वह 'उभय–स्थिति प्राप्त करता है जहाँ दो पक्ष हो वहाँ वह दोनों पक्षों में आदर प्राप्त करता है, उसकी दोनों पक्षों के लिए 'समान' स्थिति हो जाती है। 'उभय' का 'उ' ओङ्कार का उकार है। 'ओङ्कार' की 'उकार'–मात्रा का ध्यान स्वप्न–स्थान के जीवात्मा तथा ब्रह्म का ध्यान है। जो इस प्रकार 'उकार' की उपासना करता है उसके कुल में 'अब्रह्मवित्' अर्थात् 'बह्म को न जानने वाला' नहीं होता। इस 'उकार' के विषय में और भी लिखा है–

> स्वप्नस्थानश्चतुरात्मा तैजसो हिरण्यगर्भश्चतूरूप उकार एव चतूरूपो ह्ययमुकारः स्थूलसूक्ष्म बीज साक्षिभिरुकाररूपैरूत्कर्षादुभयत्वात्स्थूलत्वात्सूक्ष्मत्वाद्बीज त्वात्साक्षित्वाच्चौत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्तति समानश्च भवति य एवं भेद।[73]

अर्थात्, जहाँ पर स्थित होकर जीवन स्वप्न पदार्थों को देखता है वह कण्ठदेश में स्थित स्वप्न स्थान वाला है जिनके स्थूल, सूक्ष्म, कारण और साक्षी से चार स्वरूप हैं वे पूर्णतम परमात्मा के द्वितीय पाद रूप तैजस हिरण्यगर्भ ओङ्कार को द्वितीय मात्रा के रूप में उपलब्ध होने वाला वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ति, परा इन चार रूपों से युक्त 'उकार' ये दोनों समान हैं। 'उकार' ही 'तैजस' है। उकार के जो स्थूल, सूक्ष्म, बीज और साक्षी ये चार रूप हैं इनके द्वारा अवश्य ही उकार भी तैजस पुरुष की भाँति चार स्वरूपों वाला है। अतः इस समानता के कारण दोनों परस्पर अभिन्न हैं। इसके अतिरिक्त ओङ्कार की द्वितीय मात्रा 'उकार' वह प्रथमा मात्रा 'अकार' की अपेक्षा उत्कृष्ट है तथा उभयरूप है 'अ' और 'म' इन दोनों के बीच में होने के कारण दोनों के साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः दोनों के भाव से युक्त मध्यवर्ती है। इसी प्रकार द्वितीय पाद रूप तैजस प्रथम पाद स्वरूप वैश्वानर से उत्कृष्ट है। वैश्वानर और प्राज्ञ इन दोनों के मध्यवर्ती होने से वह उभय सम्बन्धी भी है। अतः इस समानता के कारण भी 'उकार' ही 'तैजस' है। इतना ही नहीं पूर्ववत् स्थूल, सूक्ष्म, बीज और साक्षी रूप होने के कारण भी दोनों परस्पर समान हैं। जो अधिकारी पुरुष इस प्रकार उकार वाच्य तैजस को जानता है वह निश्चय ही ज्ञान की परम्परा को समुन्नत करता है अर्थात् देह के बन्धन से अपनी आत्मा का उद्धार करता है और सब मोक्ष वालों के अन्तर्गत समान दोष के अभाव होने से हो जाता है। अब 'माण्डूक्योपनिषद्' में 'ज्ञान' और 'ब्रह्म' शब्द को प्रयुक्त किया गया है, इससे यह प्रश्न होता है कि ज्ञान किसको कहते हैं और ब्रह्म किसको कहते हैं। इसका उत्तर इस प्रकार है–

> अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
> आचार्योपासूनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः।।
> इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च।
> जन्ममृत्युजराव्याधिदुः खदोषानुदर्शनम्।।
> असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।
> नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु।।
> मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
> विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि।।
> अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
> एतज्ज्ञानमितिप्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।।[74]

अर्थात्, 1. मानहीनता, 2. दम्भहीनता, 3. अहिंसा, 4. क्षमा, 5. सरलता, 6. आचार्य की उपासना, 7. शौच, 8. स्थिरता और 9. मन का भलीभाँति निग्रह, 10. इन्द्रियों के भोगों में वैराग्य, 11. अहङ्कारहीनता और 12. जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि एवं दुःखरूप दोष को बार–बार देखना, 13. अनासक्ति, 14. पुत्र, स्त्री, घर आदि में अलिप्तता और 15. इष्ट और अनिष्ट की प्राप्तियों में सदा समचित रहना, 16. मुझमें अनन्योग से अव्यभिचारिणी भक्ति, 17. एकान्त देश के सेवन से करने का स्वभाव और 18. जन–समुदाय में अप्रीति, 19. अध्यात्मज्ञान में नित्य स्थिति, 20. तत्त्वज्ञान के अर्थ का दर्शन, यह सब ज्ञान की श्रेणी में आता है इसके विपरीत जो कुछ भी है वह अज्ञान ऐसा कहा गया है।

> जन्माद्यस्य यतः। [75]

अर्थात्, जिस परम पुरुष में सृष्टि, स्थिति और लय आदि होता है वही ब्रह्म है।

> यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति यम्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्म।[76]

अर्थात्, निश्चय ही जिससे सब भूत उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न हुए जिसके आश्रय से जीवित रहते हैं और प्रलय में जिसमें प्रवेश करते हैं तथा जिसके आश्रय से मुक्त हो जाते हैं जिसको विशेष रूप से जानने की इच्छा करो वही ब्रह्म है। इस प्रकार स्पष्ट है कि 'ज्ञान' और 'ब्रह्म' क्या है।

> सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद।।[77]

अर्थात्, 'मकार' ओङ्कार (प्रणव) की तृतीय मात्रा है। यह 'जीवात्मा' तथा 'ब्रह्म' के 'सुषुप्त' स्थान की, जिसका प्रतिनिधि 'प्राज्ञ'–शरीर कहा गया है। जो सुषुप्त स्थान वाले जीवात्मा तथा ब्रह्म को जानता है, उसकी उपासना करता है, वह सम्पूर्ण विश्व को 'मिनोति'–उसको माप लेता है अर्थात् जान जाता है। 'मिनोति' का 'म्' ओङ्कार का मकार है। वह विश्व की 'इति' अर्थात् अन्त भी प्राप्त कर लेता है। जैसे 'म्' स्पर्श व्यञ्जनों का अन्तिम अक्षर है वैसे सुषुप्तावस्था प्रकृति की 'इति', अर्थात् अन्तिम अवस्था है। जो इस प्रकार 'मकार' की उपासना करता है वह सम्पूर्ण संसार का अन्त प्राप्त कर लेता है। क्योंकि लिखा है–

> सुषुप्तस्थानश्चतुरात्मा प्राज्ञ ईश्वरश्चतूरूपो मकार एव चतूरूपो ह्ययं मकार स्थूल सूक्ष्मबीजसाक्षिभिर्मकार रूपैर्मितेरपीतेर्वा स्थूलत्वात्सूक्ष्मत्वादबीजत्वात्साक्षि–त्वाच्चमिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद। [78]

अर्थात् हृदय की कर्णिका के अग्र में स्थित सुषुप्तस्थान वाले चतुरात्मा वह प्राज्ञ ईश्वर जो परमात्मा के तृतीय पादरूप में बताया गया है ओङ्कार की तीसरी मात्रा के रूप में उपलब्ध होने वाला पूर्वोक्त चार रूपों से युक्त मकार ही है। निश्चय ही यह मकार अपने स्थूल, सूक्ष्म, बीज और साक्षी इन स्वरूपों में चार रूप वाला है और प्राज्ञ भी चार रूपों वाला है। अतः समानता के कारण मकार ही प्राज्ञ है इसके अतिरिक्त 'मिति' और 'अपीति' अर्थात् माप करने और विलीन करने के कारण भी मकार और प्राज्ञ परस्पर समानता रखते हैं 'अ' और 'उ' के उच्चारण के बाद 'म्' का उच्चारण होता है अतः वे दोनों उसके द्वारा माप लिये जाते हैं तथा 'ओम्' कहते समय 'म्' के उच्चारण के साथ मुख बन्द हो जाता है अतः 'अ' और 'उ' उसी में विलीन हो जाते हैं। इसी प्रकार वैश्वानर और तैजस भी प्राज्ञ द्वारा माप लिये जाते हैं क्योंकि जाग्रत और स्वप्न के अन्त में सुषुप्ति आती है तथा सुषुप्ति में जाग्रत और स्वप्न का लय हो जाता है। अतः क्रमशः जाग्रत और स्वप्न के अधिष्ठाता वैश्वानर और तैजस भी प्राज्ञ में विलीन हो जाते हैं। इन समानताओं के कारण तथा इसके अतिरिक्त पूर्ववत् स्थूल, सूक्ष्म, बीज और साक्षी रूप होने से भी दोनों परस्पर समान हैं। जो इस प्रकार जानता है वह निश्चय करके इस सम्पूर्ण जगत् को अपने भीतर मुक्त होकर प्राप्त कर लेता है और दुःखादि अनिष्ट के विनाश करने वाला हो जाता है।

इसके पश्चात् मकार वाच्य प्राज्ञ के जानने वाले के लिए जो फल मिलता है वह प्रस्तुत किया गया है कि जो अधिकारी इस प्रकार मकार वाच्य प्राज्ञ को भलीभाँति जानता है वह ज्ञानी पुरुष निश्चय करके प्रसिद्ध इस सम्पूर्ण यथायोग्य जगत् को अपनी भीतर मुक्त होकर प्राप्त कर लेता है और दुःखादि अनिष्ट के विनाश करने वाला हो जाता है।

> अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोंकार। आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद य एवं वेद।।[79]

अर्थात्, मात्रा–रहित 'ओङ्कार' चतुर्थ है। जिस प्रकार शरीर की जाग्रतावस्था, स्वप्नावस्था तथा सुषुप्तावस्था में से निकलकर जीवात्मा अपने चतुर्थ रूप में आ जाता है, जैसे प्रकृति की जाग्रतावस्था, स्वप्नावस्था तथा सुषुप्तावस्था में से निकलकर ब्रह्म अपनी तुरीयावस्था में आ जाता है, वैसे– अ, उ, म्– इन जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्त अवस्थाओं की प्रतिनिधि तीन मात्राओं से पृथक् ओङ्कार का अमात्र रूप भी है। वह रूप व्यवहार में नहीं आता, वह शिव है, अद्वैत है, वह संसार के प्रपञ्च का उपशमन हो जाता है। ओङ्कार का यह अमात्र रूप, 'आत्मा' का अर्थात् 'जीवात्मा' का तथा ब्रह्म का तात्त्विक रूप है, इस रूप से ओङ्कार मानो आत्मा ही है। जो ओङ्कार के इस रूप को जानता है, वह बाहर न भटककर आत्मज्ञान द्वारा अन्तरात्मा में प्रवेश कर जाता है।

अतः स्पष्ट है कि इन उपनिषदों के अन्तर्गत भी ओङ्कार को जीवन के एक अभिन्न अङ्ग के रूप में स्वीकार किया गया है और संसार के दो मुख्य तत्त्वों की ओर सङ्केत किया गया है–(1) शरीर में आत्मा और (2) प्रकृति में ब्रह्म या परमात्मा। [80]

सन्दर्भ–सूची

1. अमरकोषः, पृ. 83
2. संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ. 690
3. उपनिषद् प्रकाश, पृ. 359
4. कठोपनिषद्, द्वितीय वल्ली, 15
5. तदेव, 16
6. प्रश्नोपनिषद् पञ्चम प्रश्न–1
7. तदेव, प्रश्न–2
8. मुण्डकोपनिषद्–द्वितीय मुण्डक, द्वितीय खण्ड–4
9. माण्डूक्योपनिषद्–1
10. तैत्तिरीयोपनिषद्–शिक्षाध्याय–वल्ली का अष्टम अनुवाक–1
11. ऋग्वेद–मण्डल 1, सूक्त.–164, मं.–39 और श्वेताश्वेतरोपनिषद्–अ. 4, श्रु. 8
12. निरुक्त, अध्याय–13, पाद–1, खण्ड–10, पृ. 592
13. शुक्ल यजुर्वेद, अध्याय–40, मं.–18
14. ईशावास्योपनिषद्, श्रु.–17
15. कठोपनिषद्, अ.–1, व.–2, श्रु.–17
16. प्रश्नोपनिषद्, प्र. 5, श्रु.–7
17. मुण्डकोपनिषद्, मु.–2, खं–2, श्रु.–6
18. छान्दोग्योपनिषद्, अ.–1, ख.–1, श्रु.–1
19. श्वेताश्वतरोपनिषद्, अध्याय–1, श्रु.–13
20. कैवल्योपनिषद्, खण्ड–1, श्रु.–11 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
21. अरुणिकोपनिषद्, श्रु.–5 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
22. अथर्वशिरोपनिषद्, श्रु.–4 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
23. अथर्वशिखोपनिषद्, श्रु.–1 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
24. मैत्रायण्युपनिषद्, प्रपाठक–5, श्रु.–4 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
25. ध्यानविदूपनिषद्, श्रु.–14 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
26. तदेव, श्रु.–16 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
27. ब्रह्मविद्योपनिषद्, श्रु.–2 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
28. योगतत्त्वोपनिषद्, श्रु.–63 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
29. तदेव, श्रु.–64 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
30. आत्मप्रबोधोपनिषद्, श्रु.–1 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
31. नारदपरि ब्रा.–उपदेश–8, श्रु.–3 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
32. नारायणोपनिषद्, श्रु.–79 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
33. योगचूडामण्युपनिषद्, श्रु.–77 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
34. तदेव, श्रु.–88 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
35. त्रिपाद्विभूतिमहानोपनिषद्, अ.–1 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
36. योगशिखोपनिषद्, अ.–6, श्रु.–57 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
37. उपनिषत्सङ्ग्रह–सूर्योपनिषद्, पृ. 510
38. अक्ष्युपनिषद्, श्रु.–43 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
39. तारसारोपनिषद्, पाद.–2, श्रु.–5 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
40. गोपालोत्तरता.–श्रु.–9 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
41. शाटयायनीयोपनिषद्, श्रु.–16 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
42. भगवद्गीता, अध्याय–7, श्लोक–8
43. भगवद्गीता, अध्याय–8, श्लोक–13
44. तदेव, अध्याय–9, श्लोक–17
45. तदेव, अध्याय–17, श्लोक–23
46. तदेव, अध्याय–17, श्लोक–24
47. मनुस्मृति, अध्याय–2, श्लोक–74
48. योगसूत्र, अध्याय–1, पा.–1, सू.–27
49. तदेव, अध्याय–1, पा.–1, सू.–28
50. अष्टश्लोकी, श्लोक–1 (स्रोतरत्नमाला)

51. माण्डूक्योपनिषद्, श्रु.–2
52. तदेव, श्रु.–8
53. अथर्वशिरोपनिषद्, श्रु.–4 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
54. पाणिनीय व्याकरण, अध्याय–6, पा.–1, सूत्र–87
55. आत्मप्रबोधोपनिषद्, श्रु.–1 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
56. योगचूडामण्युपनिषद्, श्रु.–74 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
57. मनुस्मृति, अध्याय–2, श्लोक–76
58. पाद्यपुराण, उत्तर खण्ड–6, अध्याय–226, श्लोक–22
59. निगमनोपनिषद्–1 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
60. मुमुक्षुपनिषद्–32 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
61. तदेव–33 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
62. अष्टश्लोकी, श्रु.–1 (स्त्रोतरत्नमाला)
63. माण्डूक्योपनिषद्–9
64. ऐतरेयारण्यक, 2/3–6
65. भगवद्गीता, अध्याय–12, श्लोक–33
66. पाद्मपुराण–उत्तराखण्ड–, अध्याय–226, श्लोक–30
67. अष्टश्लोकी–1 (स्त्रोतरत्नमाला)
68. तदेव
69. तदेव
70. तदेव
71. नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषद्, खण्ड–2 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
72. माण्डूक्योपनिषद्–10
73. नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषद्, खण्ड–2 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
74. भगवद्गीता, अध्याय–13, श्लोक–7–11
75. शारीरकमीमांसा, अध्याय–1, पा.–1, सूत्र–2
76. तैत्तिरीयोपनिषद्–तृतीय वल्ली, अनुवाक–1
77. माण्डूक्योपनिषद्–11
78. नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषद्, खण्ड–2 (उपनिषत्सङ्ग्रह)
79. माण्डूक्योपनिषद्–12
80. उपनिषद् प्रकाश, पृ. 273